International Journal of Jyotish Research: 2018; 3(2): 19-21

International Journal of Jyotish Research
(वेदचक्षु)

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2018; 3(2): 19-21
© 2018 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 20-05-2018
Accepted: 23-06-2018

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, भारत

Correspondence
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, भारत

संस्कृत का महत्त्व

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

प्रस्तावना

संस्कृत शब्द 'सम्' पूर्वक 'कृ' धातु से बना हुआ है, जिसका मौलिक अर्थ है – संस्कार की गई भाषा। इसीलिए संस्कृत से तात्पर्य विशुद्धता से है। इस जगत् में जो कुछ शुद्ध है, वह संस्कृत है, इससे इतर असंस्कृत व अशुद्ध है। भाषा के अर्थ में संस्कृत का प्रयोग सर्वप्रथम बाल्मीकि रामायण में द्रष्टव्य होता है – सुन्दरकाण्ड में सीताजी से किस भाषा में वार्तालाप किया जाय? इसका विचार करते हुए हनुमान जी ने कहा है कि यदि द्विज के समान मैं संस्कृतवाणी बोलूँगा तो सीता मुझे रावण समझकर डर जायेगी[1]। यास्क और पाणिनी के ग्रन्थों में लोक व्यवहार में आने वाली बोली का नाम केवल 'भाषा' है।[2] संस्कृत शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं मिलता। जब भाषा का सर्वसाधारण में प्रचार कम होने लगा और पालि तथा प्राकृत भाषाएँ बोल–चाल की भाषायें बन गयीं, तब जान पड़ता है, विद्वानों ने प्राकृत भाषा से भेद दिखलाने के लिये इसका नाम संस्कृत भाषा दे दिया। महाकवि दण्डी के समर्थन से इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है। दण्डी ने प्राकृत भाषा से भेद दिखलाने के अवसर पर संस्कृत का प्रयोग भाषा के लिए स्पष्टतः किया है –

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः

यह वाल्मीकि रामायण से चली आने वाली परम्परा का अनुसरण है, क्योंकि लोक व्यवहार में प्रचलित भाषा के रूप में प्राकृत का उदय वाल्मीकि युग की घटना है। इसका अनुमान हनुमान जी के पूर्वोक्त निर्देश से स्पष्टतः सिद्ध होता है।

संस्कृत भाषा के दो रूप हमारे सामने प्रस्तुत है– वैदिकी तथा लौकिकी, वेदभाषा तथा लोकभाषा। वैदिक भाषा में संहिता तथा ब्राह्मणों की रचना हुई है। लौकिक संस्कृत में वाल्मीकीय रामायण, महाभारत आदि की रचना है।

संस्कृत की महत्ता को प्रदर्शित करने वाले अनेक कारण विद्यमान हैं। निम्नलिखित रूप में इसे समझा जा सकता है –

1. प्राचीनता 2. व्यापकता 3. धार्मिक दृष्टि 4. सांस्कृतिक दृष्टि 5. कला दृष्टि 6. विश्वबन्धुत्व की दृष्टि से

प्राचीनताः सर्वप्रथम प्राचीनता की दृष्टि में यह अपूर्व है। यह माना जाता है कि संस्कृत 'दैववाणी' है अर्थात् जब देवता संस्कृत को वार्तालाप के रूप में उपयोग करते थे, तो स्पष्ट है कि यह कितना प्राचीन है। अपने अलौकिकता के कारण यह आज भी चिरनवीनता को प्राप्त करता है। जहॉ तक संस्कृत साहित्य का प्रश्न है तो इतना प्राचीन साहित्य कहीं भी उपलब्ध नहीं है। पश्चिमी विद्वानों की दृष्टि में मिश्रदेश का साहित्य सबसे प्राचीन माना जाता है, परन्तु वह भी कितना प्राचीन है? विक्रम से केवल चार हजार वर्ष पूर्व। हमारे यहॉ ऋग्वेद की रचना के समय के विषय में पर्याप्त मतभेद है। हम सभी जानते है कि ऋग्वेद के मन्त्रों को 'ऋचा' कहा जाता है। 'ऋषयः मन्त्र द्रष्टारः' सिद्धान्त के अनुसार ऋषि मन्त्र का द्रष्टा है और ऋचायें ऋषि हृदय में अवतरित होती हैं इसीलिए वेद को 'अपौरूषेय' भी कहते हैं। सम्प्रति कुछ विद्वान लोग ऋग्वेद की रचना हजारों वर्ष पूर्व मानते है। यदि इस मत को अत्युक्ति पूर्ण होने से हम मानने के लिए प्रस्तुत न भी हों, तो भी उस मत में तो हमें आस्था रखनी ही पड़ेगी, जिसे लोकमान्य बालगंगाधर तिलक न गणित के अकाट्य प्रमाण के उपर निर्धारित किया है – उनका कहना है कि ऋग्वेद के अनेक सूक्तों की रचना विक्रम से कम से कम छः हजार वर्ष पूर्व अवश्य हुई थी। यही मत आजकल का प्रामाणिक मत है। इसके अनुसार संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम ग्रन्थ का निर्माण आज से लगभग 8000 वर्ष पहले हुआ था। कोई भी साहित्य इतना प्राचीन नहीं है। अपने उद्भव काल से संस्कृत साहित्य की जो धारा प्रवाहित हुई वह आज तक अविच्छिन्न गति से गतिमान है और शाश्वत रहेगी। अन्य साहित्यों का इतिहास देखने से यह प्रतीत होता है कि वह साहित्य अनुकूल परिस्थितियों में पनपता है, प्रवाह कुछ दिन तक अवश्य रहता है,

परन्तु विषम परिस्थिति के उपस्थित होते ही वह प्रवाह शिथिल पड़ जाता है। अतः प्राचीनता की दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो यह अक्षुण्ण है।

व्यापकताः इस जगत् में समस्त विशुद्ध पदार्थ संस्कृतमय है। इससे संस्कृत के व्यापकता का बोध हो जाता है। वेद, पुराण, उपनिषद, छः शास्त्र ;शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द एवं ज्योतिषद्ध आदि सभी संस्कृत में ही उद्धृत है। यह इसकी व्यापकता है । संस्कृत साहित्य सर्वाङ्गीण है। यह सब अंगों से परिपूर्ण है। मानव जीवन के लिये चार ही पुरूषार्थ है – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । संस्कृत साहित्य में इन चारों पुरूषार्थों का विवेचन बड़े विस्तार तथा विचार के साथ किया गया है। साधारण लोगों क यह धारणा बनी हुई है कि संस्कृत का केवल धर्मग्रन्थों में बाहुल्यता है, परन्तु वास्तविकता कुछ दूसरी है। प्राचीन ग्रन्थकारों ने भौतिक जगत् के साधनभूत अर्थशास्त्र और काम शास्त्र के वर्णन के वर्णन की ओर भी अपनी दृष्टि फेरी है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र तो प्रसिद्ध ही है। इस एक ग्रन्थ के ही अध्ययन से हम संस्कृत साहित्य में लिखे गये राजनीति शास्त्र से सर्वांगीण परिचय प्राप्त कर सकते है, परन्तु इसके अतिरिक्त एक विशाल साहित्य अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में है। वात्स्यायन मुनि ने कामसूत्र में गृहस्थ जीवन के लिये उपादेय साधनों का वर्णन बड़े अच्छे ढंग से किया है। विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक, स्थापत्य, पशु–पक्षी सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। भारतवर्ष में द्रष्टव्य है कि यहॉ 'प्रेयःशास्त्र' तथा 'श्रेयशास्त्र' उभय शास्त्रों के अध्ययन की ओर प्राचीन काल से विद्वानों की प्रवृत्ति रही है। 'प्रेयःशास्त्र' वह है जिसमें संसार में सुख देनेवाली काल विद्याओं का वर्णन हो और 'श्रेयःशास्त्र' वह है जिसमें इस प्रपंच के दुःखों को दूर करने वाले मोक्षोपयोगी विषयों का विवेचन हो। इन दोनों प्रकार के शास्त्रों की रचना संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हो रही है।

धार्मिक दृष्टिः धार्मिक दृष्टि से भी संस्कृत का महत्व अत्यन्त गौरवमयी है। आम जनमानस भी संस्कृत को धार्मिक दृष्टिकोण से जानते है। जो व्यक्ति आर्यों के मूल धर्म के स्वरूप को जानने का इच्छुक हो उसे वेदों को पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। वेदों में आर्यधर्म का विशुद्ध रूप उपलब्ध होता है। समस्त धार्मिक वांगमय संस्कृत से भरा पड़ा है। वेद वह मूल स्रोत है जहॉ से नाना प्रकार की धार्मिक धाराऍ निकल कर मानव हृदय तथा मस्तिष्क का सदा से आप्यायित करती आयी है। वेदों के अनुशीलन का ही फल है कि पश्चिमी विद्वानों ने तुलनात्मक पुराण शास्त्र जैसे नवीन शास्त्र को ढूँढ निकाला। इस शास्त्र से पता चलता है कि प्राचीनकाल में देवताओं के सम्बन्ध में लोगों के क्या विचार थे तथा किन–किन उपासना से के प्रकारों से वह उनकी कृपा प्राप्त करने में सफल होते थे।

सांस्कृतिक दृष्टि

सांस्कृतिक दृष्टि से संस्कृत का गौरव और भी विशेष रूप से दीख पड़ता है। इतिहास के पृष्ठों में यह प्रामाणित हो चुका है कि भारतीय लोग अन्य देशों में अपने प्रभुत्व को, अपनी सभ्यता को तथा अपनी संस्कृति के विस्तार के लिये सदा से उद्योगशील रहे हैं। उन्होंने प्रशान्त महासागर के द्वीपपुंजों में जाकर अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। भारतवर्ष और चीन के बीच में जो विशाल प्रायद्वीप है उसे आज 'हिन्द चीन' कहते है। इससे सूचित होता है कि उसका आधा अंश चीन का है, परन्तु 13वीं और 14वीं शताब्दी से पहले इसमें चीन का कुछ भी अंश न था। यह बिल्कुल 'हिन्द' ही था। बहुत पहले यहॉ जंगली जातियॉ रहती थीं, परन्तु सुवर्ण की खान होने के कारण जिन भारतीय नाविकों ने इन स्थानों का पता लगाया उन्होंने इसे सुवर्ण भूमि तथा द्वीपों को सुवर्णद्वीप नाम दिया। अशोक के समय यहॉ भी बुद्ध का उपदेश पहुँचाया गया। विक्रम के आरंभ से लेकर 14वीं शताब्दी तक अनेक भारतीय राज्य यहॉ बन रहे, जिनमें संस्कृत राजभाषा के रूप में व्यवहृत होती थी। कम्बोज में मनु की धार्मिक व्यवस्था के अनुसार राज्य प्रबन्ध किया जाता था। आर्यावर्ती वर्णमाला और वांगमय के संसर्ग से यहॉ की स्थानीय बोलियॉ लिखित भाषायें बन गयीं और धीरे – धीरे साहित्य का विकास होने लगा। जावा की कवि भाषा में रामायण और महाभारत के व्याख्यान विद्यमान है। भारतवासियों के समान ही यहॉ के निवासी रामलीला तथा अर्जुनलीला देखकर आज भी अपना चित्तविनोद किया करते है। बाली द्वीप की सभ्यता तथा धर्म पूर्णरूपेण भारतीय है। यहॉ का धर्म तन्त्रप्रधान है।

कला दृष्टि

इस प्रकार प्राचीनता, अविच्छिन्नता, व्यापकता, धार्मिक तथा सभ्यता की दृष्टि से परीक्षा करने पर हमारा संस्कृत साहित्य नितान्त महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। प्रत्येक भारतीय का यह परम कर्तव्य है कि वह इसका अध्ययन करे। इनके अतिरिक्त विशुद्ध कला की दृष्टि से भी यह साहित्य उपेक्षणीय नहीं है। जिस साहित्य में कालिदास जैसे कमनीय कविता लिखने वाले कवि हुए, भवभूति जैसे नाटककार हुए, निकी वष वर्तिनी बनकर सरस्वती ने अपूर्व लास्य दिखलाया, बाणभट्ट जैसे गद्य लेखक हुए, जो अपने सरस–मसृण काव्य से त्रिलोकसुन्दरी कादम्बरी की कमनीय कथा सुना सुनाकर श्रोताओं को मत्त बनाया, जयदेव जैसे गीतिकाव्य के लेखक विद्यमान थे, जिन्होंने अपनी मधुर कोमलकान्त पदावली के द्वारा विदग्धों के चित्त में मधुरस की वर्षा की। श्रीहर्ष जैसे पण्डित कवि हुए, जिन्होंने काव्य और दर्शन का अपूर्व सम्मिलन प्रस्तुत किया। उस संस्कृत साहित्य की महिमा का वर्णन समुचित शब्दों में किस प्रकार किया जा सकता है?

विश्वबन्धुत्व की दृष्टि

संस्कृत साहित्य की यह एक अनोखी विशेषता रही है कि वह मानवमात्र के लिए कल्याण की भावना को अग्रसर करता है। संकीर्ण स्वार्थ को ही मानव जीवन का चरम पुरूषार्थ माननेवाले पाश्चात्य देशों के साहित्य में जो एकांगिता विद्यमान है, वह संस्कृत साहित्य को स्पर्श नहीं करती। कारण इसका स्पष्ट है कि साहित्य संस्कृति का अग्रदूत है। साहित्य संस्कृति का वाहन है।

संस्कृत साहित्य का इतिहास पूर्वोक्त सिद्धान्त का पूर्ण समर्थक है। संस्कृत भारतीय समाज के भव्य विचारों का दर्पण है। भारतवर्ष में सांसारिक जीवन के उपकरणों का सौलभ्य होने के कारण भारतीय समाज जीवन–संग्राम के विकट संघर्ष से अपने को पृथक् रखकर आनन्द की अनुभूति को वास्तविक शाश्वत आनन्द की उपलब्धि को अपना लक्ष्य मानता है। इसलिए संस्कृत काव्य जीवन की विषम परिस्थितियों के भीतर से आनन्द की खोज में सर्वदा संलग्न रहा है। आनन्द सच्चिदानन्द भगवान का विशुद्ध पूर्ण रूप है। इसीलिए संस्कृत काव्य की आत्मा रस है। रस का उन्मीलन श्रोता तथा पाठक के हृदय में आनन्द का उन्मेष ही काव्य का अन्तिम लक्ष्य है। संस्कृत आलोचनाशास्त्र में औचित्य, रीति, गुण तथा अलंकार आदि काव्यांगों का विवेचन होने पर भी रसविवेचन ही मुख्यतया प्रतिपाद्य विषय है। भारतीय समाज का मेरूदण्ड है गृहस्थाश्रम, अन्य आश्रमों की स्थिति गृहस्थाश्रम के ऊपर ही निर्भर है। फलतः भारतवर्ष का प्रवृत्तिमूलक समाज गृहस्थ धर्म को पूर्ण महत्त्व प्रदान करता है और इसीलिए संस्कृत साहित्य में गृहस्थ धर्म का चित्रण सांगोपांग, पूर्ण तथा हृदयावर्जक रूप से उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ – संस्कृत साहित्य का आदि महाकाव्य वाल्मीकीय रामायण गृहस्थ धर्म की धुरी पर ही घूमता है।

निष्कर्ष

संस्कृत असीमित है अतः इसको एक निश्चित परिधि में मापकर इसका आंकलन नहीं किया जा सकता। अपने विशालता और अपूर्वता के कारण यह अविच्छिन्न है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के साथ इसका प्रादुर्भव हुआ है और उसके अवसान पर्यन्त संस्कृत शाश्वत

रूप में विद्यमान रहेगा। सम्प्रति विज्ञान और तकनीकी के युग में शिक्षा के सर्वोच्च शिखर पर बैठे लोग इसकी उपेक्षा कर रहे है जिसका परिणाम एक दिन बड़ा भयानक होगा। मनुष्य जब–जब अपने मूल का त्याग करता है तब–तब उसे घोर विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। अतः मानवमात्र को संस्कृत से परिचित होना चाहिए। प्रत्येक भारतीय का सर्वप्रथम दायित्व है कि वह अपनी विरासत में मिली मूल संस्कृति के अध्ययनार्थ संस्कृत के शरणागत हो तभी उसका कल्याण सम्भव है। अन्ते –
'नित्यं ज्ञानं वितर भगवन् भूयसे मंगलाय' इति प्रार्थनामहे।।

सन्दर्भ

1. यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
   रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ।।
2. भाषायामन्वध्यायञ्च निरूक्त – 1/4
   भाषायां सदवस्रुवः । अष्टाध्यायी – 3/2/108
3. वाल्मीकी रामायण – महर्षि वाल्मीकि
4. अष्टाध्यायी – महर्षि पाणिनी
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय